संपादकीय

जीवन मूल्य और स्वतंत्रता

स्वतंत्रता समस्त मानव-मूल्यों की आधारशिला है। इसकी अनुपस्थिति में बाकी सारे मानव-मूल्य लादे हुए लगते हैं, फलतः अन्य मूल्यों और नैतिकता का कोई अर्थ नहीं रह जाता, क्योंकि यह बाहरी दबावों यथा रूढ़ि, परम्परा, धर्म, क्षेत्र, सरकार, शासन, कानून, न्यायालय द्वारा लागू कराए गये होते हैं। इन दबावों के अंतर्गत भी नैतिकता का पालन हो सकता है, बशर्ते वह अंतर्मन की उपज या कम-से-कम इस स्तर पर स्वीकृत हो। लोग उसका पालन इसलिए न कर रहे हों कि उसके पालन न करने से दण्ड मिलेगा, चाहे वह दण्ड-सजा किसी भी प्रकार का क्यों न हो।

स्वेच्छा के अभाव में भय से, आतंक से, लोभ से नैतिकता का पालन ऊपर से नैतिकता जैसी दिखकर भी मूलतः नैतिकता नहीं होती। नैतिकता वह तभी होगी, जब उसे लोग जबर्दस्ती या बेमन से न अपनाकर अपनी स्वतंत्र इच्छा-चेतना से पालन कर रहे हों। इस प्रकार नैतिकता और स्वतंत्रता परस्पर पूरक ठहरती है। चेतना की स्वतंत्रता द्वारा मनुष्य अपना और अपने समाज का निर्माण कर सकता है। यहीं स्वतंत्रता का गहरा संबंध व्यक्ति के अंतर्मन से जुड़ता है। बिना मानसिक स्वतंत्रता के मनुष्य आर्थिक, धार्मिक, संवैधानिक स्वतंत्रता का लाभ नहीं उठाया सकता। इसलिए पहली जरूरत मानव-मन में स्वतंत्र चेतना का विकास करना होता है। ऐसी स्वतंत्रता व्यक्ति में विकसित हो जाए तो बिना कठोर अनुशासन के नैतिकता की मात्रा बढ़ जाएगी और स्वतंत्रता को अपहृत करने वाली शक्तियों के प्रतिरोध की क्षमता प्रचुर हो जाएगी। व्यक्ति की मानसिक स्वतंत्रता के अभाव में सामाजिक स्वतंत्रता एवं प्रगति कल्पना-मात्र है। पद्मपुराण में कहा गया है कि स्वतंत्रता के समान और कोई सुख नहीं है, जिसे हिन्दी कवि राम नरेश त्रिपाठी ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है -'एक घड़ी की भी परवशता,/कोटि नरक के सम है।/पल भर की भी स्वतंत्रता,/सौ स्वर्गों से उत्तम है।' स्पष्ट है कि स्वतंत्रता ही सारी उन्नतियों, खुशियों का आधार है, इसके विपरीत परतंत्र-पराधीन व्यक्ति को सपने में भी सुख की अनुभूति नहीं होती। सपनों पर भी दासत्व का बोझ रहता है, 'पराधीन सपनेऊ सुख नाहिं।' इसलिए मुक्त, आजाद, स्वाधीन, स्वतंत्र महसूस करना मानव जीवन की ही नहीं, वरन् प्राणिमात्र की चरमोपलब्धि है। एक पक्षी के रूप में प्राणिमात्र की आकांक्षा होती है कि वह उन्मुक्त आकाश में विचरण करने वाला और प्रकृति के साहचर्य में रहने वाला प्राणी रहे। चाहे उसे सोने के पिंजड़े में ही अच्छा-अच्छा खाना क्यों न दिया जाए, उससे अच्छा तो पेड़ की डालियों पर नीम के पत्ते व फलों का खाना है। वस्तुतः स्वतंत्रता के साथ रहना हर प्राणी की स्वाभाविक चेतना है। 'गद्यकर्णामृतम्' में भी स्वतंत्रता को व्यक्ति की चेतना व पराक्रम का प्रमुख गुण बताया गया है, जो स्वतंत्र होते हैं, वे स्वभावतः निर्भय और फलनिरपेक्ष प्रवृत्ति वाले होते हैं।

भारतीय और पाश्चात्य-विद्वानों ने स्वतंत्रता को जहाँ राज्य-समाज के संदर्भ में परिभाषित किया है, वहीं इसे प्राणि-मात्र के संदर्भ में भीतरी गुण भी बताया है। महर्षि अरविन्द के शब्दों में, 'स्वाधीनता से हमारा अभिप्राय है अपनी सत्ता के नियम के अनुसार चलना, अपनी स्वाभाविक आत्म-परिपूर्णता तक विकसित होना और अपने वातावरण के साथ स्वाभाविक और स्वतंत्र रूप में समस्वरता प्राप्त करना है।' 'रामायण मंजरी' में भी मन से स्वाधीन व्यक्ति के लक्षण बताए गए हैं - 'यदि स्वाभिमान से मन उन्नत हो तो वियोग या रोग से क्या? भोगों से क्या? अप्रिय और प्रिय से क्या? क्षणिक सुंदरताओं से भी क्या? वस्तुतः स्वतंत्रता बहुमूल्य है, बाकी सारे मूल्यों की ओर तभी बढ़ा जा सकता है, उनसे फायदा तभी उठाया जा सकता है जब व्यक्ति स्वतंत्र-चेता हो। स्वतंत्र-चेता होने के अर्थ यही है कि आदमी के भीतर अच्छे-बुरे फैसला लेने का विवेक भी हो और स्वतंत्रता भी औ परिस्थिति-परिवेश भी।